धार्मिक समस्याएँ --

'धारयति इति धर्मा: ' अर्थात् जो धारण किया जाता है, वही धर्म है। प्राचीन काल में धर्म की यही परिभाषा की गयी थी। आगे चलकर धर्म को परिभाषित करने का प्रयास कई आलोचकों ने किया है। भारतीय समाज में धर्म व्यक्ति के उचित-अनुचित,अच्छे-बुरे कार्यों को निर्धारक शक्ति के रूप में स्वीकृत रहा है। जैसे जैसे सामन्ती युग आता गया,समाज में धार्मिक अन्याय,अत्याचार, शोषण बढ़ता गया। सामन्ती युग में ब्राह्मणों का वर्चस्व समाज पर बढ़ता गया और धार्मिक मामलों में उनकी तूती बोलने लगी। इसी बात का फायदा उठाकर ये उच्चवर्गीय ब्राह्मण समाज के निम्न वर्ग पर अन्याय,अत्याचार करने लगे। समाज में इन्हीं को श्रेष्ठ माना जाता था। इनके वाक्य को 'वेदवाक्य' कहा जाता था। इसी के बलबूते पर वे अपनी बात मनवा लेते थे। धर्म एक ऐसी संस्था है जिसे शोषक वर्ग हमेशा अपने पक्ष में कारगर अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करता रहा है।

स्वतंत्रता के बाद सामाजिक जीवन में होनेवाले परिवर्तनों ने ग्रामीण समाज के होनेवाले धार्मिक विश्वास को हिला दिया। उनको परम्परागत धार्मिक मान्यताओं एवं आस्थाओं के समक्ष प्रश्नचिह्न आ गया। इसी कारण वहाँ धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की अनियमितताएँ देखने को मिलती हैं। निम्न वर्ग के शोषण और निम्न वर्ग को लेकर आजतक कई साहित्यकारों ने साहित्य रचनाएँ की हैं उन्हीं में से एक नागार्जुन रहे हैं।

स्वयं नागार्जुन का जन्म एक मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ और बचपन से ही उन्होंने निम्नवर्ग की समस्याओं को देखा था। 'नागार्जुन ब्राह्मण को आज भी पुरातनग्रंथी का प्रतीक मानते हैं। ब्राह्मण अब भी अहंवादी प्रकृति से ग्रस्त है और अपने आप को ज्ञान का भण्डार मानता है। मगर नागार्जुन पुरातन पंथी को

'मालगोदाम' कहते हैं -- गली-सड़ी रूढ़ियों का। इस लिए नागार्जुन अपनी ब्राह्मण बिरादरी से समझौता नहीं करते वरन उसकी सड़ी-गली रूढ़ियों पर तीखा प्रहार करते हैं।"[1]

नागार्जुन के पिता चाहते थे कि बेटा भी उनकी तरह पुरोहिताइ करें परंतु नागार्जुन ने नयी राह गढ़ ली।

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च समझे जाते थे। वे परोपकार, धर्म, दया आदि गुणों से संपन्न होते थे लेकिन धार्मिक रूढ़ियों के विकास के साथ ब्राह्मणों में इन गुणों का लोप होता चला गया। धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों को अधिक आश्रय इसी वर्ग ने दिया। धर्म की आड़ लेकर शोषण जब होता है तो उसके विकास में बाधा पहुँचती है।

वैसे देखा जाए तो 'भारत के गाँव अपने पारम्पारिक आदर्शों एवं धार्मिक मूल्यों के गौरवपूर्ण स्थल रहे हैं। अपनी पराधीनता के काल में यहाँ के ग्रामीण समाज में भी विभिन्न विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी थी। सती-प्रथा, परदा-प्रथा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह आदि ऐसी रूढ़ मान्यताएँ बन गयी थीं, जिनकी जकड़ में भारतीय नारी बूरी तरह फँस गयी थी। नारी के आन्तरिक संताप एवं संत्रास को तत्कालिक समाजसुधारकों ने बड़ी गंभीर दृष्टि से लिया और उसके टूटते स्वरूप को बचाने का यत्न किया।"[2]

(१) भगवान के नाम पर मनमानी --

नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में धार्मिक शोषण के कई रूपों को चित्रित किया है। गाँवों में ब्राह्मण को बहुत महत्व प्राप्त है। ब्राह्मण की झूठी बात पर भी ग्रामीण सहज ही विश्वास कर लेते हैं। ये ब्राह्मण

---

१ तेजसिंह - नागार्जुन का कथा साहित्य - पृ.१२।

२ डा.ज्ञानचन्द गुप्त - स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना - पृ.१२५।

पैसा लेकर वोट देनेवालों के समान है। जिसने उनकी 'पूजा' की उसी की ओर झुक गए। शुंभकरपुर गाँव में भी ऐसे ही एक पंडित थे, नाम था भोला। भोला पंडित को जयदेव ने एक जोड़ा महीन धोती और दस रुपये सुधा देने से सारे गाँव को अपने पक्ष में कर लिया था। यह भोला पंडित मैथिल ब्राह्मणों के लड़के - लड़कियों को 'सौराठ की सभा' में विवाह के लिए चुनते थे। उन्होंने कई अनमेल विवाह कर लिये थे। प्रत्येक विवाह में उन्हें पचास रुपये प्राप्त होते थे। भोला पंडित का व्यक्तित्व अंकित करते समय उपन्यासकार ने उसकी कथनी एवं करनी का विस्तार से वर्णन किया है।' [१]

'रतिनाथ की चाची' का भोलापंडित ताराबाबा के शब्दों में 'ब्राह्मपिशाच' है। वह मन-ही-मन नियमित रूपसे दुर्गासप्तशती का पारायण करता है। उनकी जिहवा नाम में तथा हाथ काम में लगे रहते हैं। जब कोई दोपहर का निमंत्रण देने पहुँचता है,तो पंडितजी पाठ छोड़कर उससे पूछ बैठते है -- 'डौड-डौड-ढ्हेड' (कौन-कौन रहेगा) वे अव्यक्त ध्वनियों द्वारा प्रश्न करने में कोई दोष नहीं समझते।' [२]

गाँव के लोग हमेशा किसी-न-किसी के दोष ढूँढते रहते हैं। गाँव के लोग लक्ष्मीनारायण पर भी जबरदस्ती ब्राह्मण हत्या का पाप मढ़ते हैं। उनके अनुसार लक्ष्मीनारायण के ससूर के इलाके में हुई ब्राह्मण हत्या का जो पाप लक्ष्मीनारायण को लगा है,पूरे गाँव को भी लग जाएगा,मानो वह कोई बिमारी हो। वयोवृद्ध पंडित कुच्चन पाठक को वश में कर दस-बारह रुपये का प्रायश्चित करने पर सब ठीक हो जाता है। अर्थात् वह तो सिर्फ धर्म के नाम पर रुपये ऐंठने का बहानाथा।

(२) वर्ण-व्यवस्था और शूद्र --

ब्राह्मण जाति ने वर्ण-व्यवस्था का निर्माण कर शिक्षा का अधिकार

---

१ बाबूराम गुप्त - उपन्यासकार नागार्जुन - पृ.९९।
२. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.६४।

अपने ही पास रख लिया । किसी भी शूद्र को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं है । वे न तो संस्कृत के स्तोत्र याद कर सकते हैं और न सुन ही सकते हैं । वैसे देखा जाए तो ब्राह्मणों का धर्म भी एक दिखावा-मात्र है और स्वार्थ-सिद्धि का माध्यम है । यह सामाजिक विषमता और बुराइयों का ,विकृतियों का पोषण करता है । 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास का निम्न वर्ग का मजदूर कुल्ली राऊत जो सत्तर साल का है, उसकी बातचीत, रंग-ढंग और बनाव-देखाव ऐसा था कि अपरिचित लोग उसे ऊँची जाति का कोई आदमी मानते थे । उसे संस्कृत के स्तोत्र और जनेऊ का मंत्र भी याद था । जब रतिनाथ राऊत के साथ तरकुलवा जा रहा था तो वह मार्ग में पड़े तालाब के किनारे बैठकर जल्दी-जल्दी संध्या करने का प्रसंग दृष्टव्य है ।'

साधुतारा जब जयनाथ से कहता है कि अवांछित गर्भ को गिराने में भगवती त्रिपुर सुंदरी का पंचाक्षर मंत्र अनुपम है तो समाज में धर्म पतन की कगार तक पहुँच गया है, ऐसा महसूस होता है । 'महातीर्थ काशी की यथार्थ स्थिति के बारे में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि 'राँड़-साँड़, सीढ़ी-संन्यासी, इनसे बचे तो सेवे काशी ।' [१]

'रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन ने जातीय परिवेश और संस्कारों को अनदेखा नहीं किया है । धर्म-पूजा, कर्म-काण्ड, व्रत-पर्व आदि चीजें उनके पात्रों के जीवन का जरूरी हिस्सा हैं । चाची के लिए कहा गया है 'सास-ससुर, बाप और पति की बरसी में पाँच-सात ब्राह्मणों को बराबर खिलाती आई थी । पर्व-त्यौहार साल में दसों पड़ते हैं, उन दिनों कुछ न करो तो देवता नाराज हो जाते हैं, लक्ष्मी चिढ़ जाती है ।'[२] यह भी धर्म के नाम पर एक लूट ही है । हर साल पाँच-सात

---

१. बाबूराव गुप्त - उपन्यासकार नागार्जुन - पृ.४२ ।
२. मधुरेश - नागार्जुन के उपन्यास - पृ.५४ ।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा आदि ले लिया जाना एक तरह से लूट ही कही जा सकती है।

(३) <u>तीज-त्यौहार - पर्व --</u>

नागार्जुन ने मिथिला जनपद त्यौहार-पर्व-तीज,भैय । दूज: दीवाली तथा देव उठान आदि का कतिपय उपन्यासों में चित्रण किया है। मिथिला जनपद में भैया दूज का त्यौहार विशेष रूप से मनाया जाता है। कार्तिक शुक्ल द्वितीया उन व्यक्तियों के लिए एक महत्वपूर्ण तिथि है,जिनकी बहन जीवित हो 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में भाई दूज का यह त्यौहार उमानाथ के लिए बचपन से ही आनंद और उत्सव का दिन रहा है। ब्याह कर दूर चली जाने पर भी प्रतिभामा प्रतिवर्ष अपने भाई को इस त्यौहार के अवसर पर बुलवाती है। रक्षा बन्धन के दिन राजाबहादुर की कलाई में पण्डित जी राखी बाँधते हैं। विजयादशमी के दिन राजाबहादुर के सिर पर जौ के मृदु मनोरम हरित गौर अंकुर डाल आते हैं। इसका भी एक-एक रुपया बँधा है।' अर्थात धार्मिक कार्य करने का ठेका यद्यपि उन्होंने ले रखा है फिर भी बिना पैसे लिए वे यह कार्य भी नहीं करते।

गौरी के कलंक के बोझ से जब वह मुक्ति पा लेती है,उसकी माँ सत्यनारायण की पूजा करवाती है। इस संदर्भ में डा.ज्ञान अस्थाना कहते हैं -- 'कलंक की यह कालिमा धनी व्यक्तियों पर नहीं व्यापती। गौरी के पति की बरसी पर जहाँ प्रतिवर्ष कभी पाँच और कभी नौ ब्राह्मण भोजन करते थे ,उस वर्ष कोई नहीं आता और वहीं गौरी की माँ जब गौरी के गर्भ गिराने के ग्यारहवें दिन सत्यनारायण की कथा कहती है तो 'सभी पास-पड़ोस से आमंत्रित होकर आते है। पन्द्रह ब्राह्मणों को भी निमंत्रित किया जाता है। गौरी की माँ धन संपन्न थी। इस कारण गाँव उसका लोहा मानता था। गौरी की माँ समाज के लिए बाधिन थी। इतना बड़ा कुकांड हो जाने पर भी तरकुलवा में

किसी ने गोरी की माँ से खुल्लम-खुल्ला कुछ न कहा ।" [१]

संस्कृत पाठशाला के पंडित जी राजाबहादुर से धन की प्राप्ति करा लेते है । इसलिये वे हमेशा पाठ के आरंभ, मध्य या अंत में राजाबहादुर का गुणगान कर देते थे ताकि और अधिक धन की प्राप्ति हो । दुर्गानन्दनसिंह अपनी माँ के श्राद्ध के अवसर पर महामहोपाध्यायधारी सभी पंडितों को बुलाकर उन्हें एक सौ रुपये की विदाई और आने-जाने का सेकेंड क्लास का खर्चा देकर ... 'धर्म दिवाकर' की उपाधि प्राप्त करते है । पैसे देकर अपने आप को ऐसी उपाधि हासिल करना बिलकुल ही अनुचित है । किसी को अगर उसके कार्यों की वजह से कोई उपाधि मिल जाए तो यह ठीक है परंतु बिना कुछ किये सिर्फ पैसे के बलबूते पर पायी गयी उपाधि का कोई मूल्य नहीं रहता ।

(४) देव पूजा विधान --

कहा जाता है कि भगवान की पूजा करते वक्त मन शांत होना चाहिए । लेकिन जब चाची को सभी औरतें दमयन्ती के कारण कोसने लगती है तब रतिनाथ उदास हो जाता है । और जब भगवान की पूजा करने लगता है तब रतिनाथ की मानसिकता का वर्णन नागार्जुन जी ने सूक्ष्मता से किया है - 'आज शालिग्राम की पूजा में रतिनाथ का मन लगा नहीं । सराइयाँ तीन थीं, देवता दो ही थे --- शालिग्राम और नर्मदेश्वर । ताँबे की सराई शालिग्राम के लिए, पीतलवाली नर्मदेश्वर के लिए । तीसरी भी पीतल की ही थी । वह पंच देवता के उद्देश्य से थी । चन्दन रगड़कर उसने अच्छत भिगोये । ' सहस्त्रशीर्षा..... ' आदि मंत्र पढकर शंख से शालिग्राम पर जल ढारा, फिर नर्मदेश्वर पर । फिर अनम भाव से चन्दन, अच्छत, फूल वगैरह चढाकर रत्ती ने पूजा खतम की । उधर थाली में भात-दाल परोसा जा चुका था ।" [२]

---

१ डा. ज्ञान अस्थाना - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ - पृ.२००-२०१ ।

२ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१४३ ।

(५) धर्म पर व्यंग्य -

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में जात-पात और धर्म पर व्यंग्य की चुटकी ली गई है जैसे 'लोगों ने कहना शुरु किया' बंगाल की लड़की से जयदेव ने अपने लड़के की शादी करा दी। लड़की का बाप किरिस्तान है और अण्डा खाता है। बाल-बच्चे समेत इतवार के दिन गिरजा जाता है .... समाजपतियों ने तुलसी, राम, गंगाजल उठाकर आपस में शपथ खायी - यदि लड़का शादी करके आया और बाप ने उसे अपने घर में घुसने दिया तो जयदेव के यहाँ का अन्न-जल हममें से जो भी ग्रहण करें, वह गो-मांस खाये। तीन बार सविधि उच्चारपूर्वक यह शपथ ली गयी थी - दमयन्ती के दरवाजे पर। नागार्जुन के व्यंग्य प्रभावोत्पादकता और पैनापन लिये हुए हैं। नागार्जुन एक सफल व्यंग्य कथाकार कहे जा सकते हैं। उन्होंने सामाजिक अन्तर्विरोधों और राजनीतिक भ्रष्टाचार और अवसरवादिता पर बड़े ही व्यंग्यात्मक भाषा में प्रहार किये हैं।'[१]

(६) व्रत-वैकल्ये -

ऐसा कहा जाता है कि भारतीय नारी हफ्ते में किसी-न-किसी दिन व्रत या उपवास किया करती है। गौरी की माँ भी इसके लिए अपवाद नहीं है। वह मंगल का व्रत तो रखती है परंतु उसके एक दिन पूर्व उसकी बेटी गौरी उसके पास आ जाती है और उसकी बातें सुनकर उस दिन उसका मन खाना बनाने में नहीं लगता फिर भी आज कुछ खा लेना अच्छा है यह सोचकर वह खाना खा लेती है। यह देखकर ऐसा लगता है कि मानों वह इच्छा न रहते हुए भी व्रत का पालन कर रही है।

जयनाथ स्वयं कुछ काम नहीं किया करते थे। भगवान विश्वंभर है तो फिर चिन्ता किस बात की, यह सोचकर चुप रहते। उन्हें अपने ब्राह्मण होने का अभिमान है --' पूजा-पाठ, गप-शप, सैर-सपाटा, बाबा वैद्यनाथ, बाबा विश्वनाथ,

---

१ तेजसिंह - नागार्जुन का कथा - साहित्य - पृ.१७४।

दुर्गा-तारा-काली - इनकी चर्चाओं के अतिरिक्त यदि और कोई वस्तु जयनाथ को प्रिय थी, तो वह थी विजया बनाम भंग भवानी । बम्भोले की बूटी का समय पर सेवन हो, वे इसके पाबन्द थे। "[१] बात बात में भगवान का नाम ले लेना उनकी आदत थी । जब उन्हें पहली पत्नी की मौत के बाद लोगों ने दूसरी शादी करने की सलाह दी तब वे बोले - 'हरे,हरे। इतना हल्का मुझे मत समझिए। जगदम्बा की कृपा होगी तो दस वर्षा में स्त्री ही इस योग्य हो जाएगा । मै तो अब यही प्रयत्न करूंगा कि देवघर या विन्ध्याचल में कोई मारवाड़ी अपने राम के लिए छोटी-सी एक मढ़ैया ढ़लवा दे ,बस।"[२]

यही कहनेवाला जयनाथ बाद में परसौनी की रहनेवाली सुशीला और एक तेलीन के चक्कर में उलझ जाता है।

शुभंकरपुर गाँव की संस्कृत पाठशाला के पंडित का नाम बबुअन मिश्र था । व्याकरण और धर्मशास्त्र के निष्णात थे। 'दूर-दूर से लोग पतिया - प्रायश्चित लिखाने आते । आस-पास के इलाकों में धार्मिक बातों के लेकर जब वाद-विवाद उपस्थित होते तो फैसला आप-पर ही निर्भर करता ।"[३]

(७) रामायण के प्रति श्रद्धा --

रामायण चाहे कितना भी पुराना क्यों न हो आज भी भारतीय समाज में उसकी श्रद्धाभाव से पूजा की जाती है। उसे आदर से देखा जाता है। लोगों के सामने एक आदर्श रखने का काम रामायण ने किया है। रतिनाथ के पिता अत्यंत क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति थे। एक बार जब इंद्रमणि के पास रतिनाथ से रामायण की प्रति देखी तो उसने सोचा कि वह पाँच दिनों में रामायण पढ़ने की ठान कर उससे माँग लो। लेकिन उसके पहले पिता से आज्ञा ली जो उन्होंने सहर्ष दे दी।

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.३१ ।

२ वही - पृ.३२ ।

३ वही - पृ.३३ ।

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR
SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

(८) मनौतियाँ --

गौरी जब अपनी लांछित अवस्था लेकर अपने मायके आ जाती है तो गौरी की माँ भगवान से मनौति माँग लेती है --'माँ ने दक्खिन की ओर मुँह करके दोनों हाथ उठा लिए और आर्त स्वर में गुनगुनाई --'दोहाई बाबा वैधनाथ की। इस मुसीबत से राजी-खुशी मेरी लड़की निकल गई,तो गंगाजल भरकर मैं सुल्तानगंज से तुम्हारे धाम पहुँचूँगी।'[१] चाहे ऐसी मनौतियों से काम चले या न चले वे मनौति तो माँग ही ली जाती है।

आज भी गाँव के लोग भगवान को अर्पण किये बगैर फलाहार तक नहीं करते हैं। रतिनाथ ने जब एक दिन पका थान पाया और वह खुशी के मारे चिल्ला उठा तो जयनाथ ने अंदर से ही कहा --

'अरे सूँघ मत लेना,भगवान को भोग लगाएँगे।'[२]

इसके पीछे यह विचारधारा थी कि भगवान को पहले अर्पण कर उसका प्रसाद हम खायेंगे। लेकिन आज कल तो पहले स्वयं खाकर बाद में फिर भगवान की याद निकालते है और बचा-खुचा भगवान को दे देते है। यहाँ रतिनाथ को अपने मन को मारना पड़ा।

(९) स्वार्थी वृत्ति --

ताराबाबा अपने स्वार्थ के लिए जयनाथ पर विशेष कृपा रखते थे। वे उसके लिए महामृत्युंजय का जप कई बार मल्लिकजी के यहाँ कर चुके थे। इसके बदले में उन्हें --'दक्षिणा के अलावा दो धोतियाँ,कम्बल का आसन,अर्धा,पंचपात्र,आचमनी,तांबे की पवित्री (अंगूठी) मिलाकरती। जितने दिनों तक जप चलता ,तस्मई (खीर) और पकवानों से एक भूक्ति होती।'[३] जयनाथ भी स्वयं मल्लिकजी को

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.३८।

२ वही - पृ.४८।

३ वही - पृ.४९।

पुराण या शास्त्र की बात सुनाकर स्काध रुपया ले जाते। इस प्रकार धार्मिक बातों का उपयोग अधिकतर पैसा ऐंठने का साधन बन जाता है।

गौरी की माँ गंगाजल की पवित्रता के बारे में कहती है। 'बूँद-भर गंगाजल में उतना ही सामर्थ्य है, जितनी की सिमरिया घाट की गंगा में। यों कोई कहे तो हमारी बेटी पचीस बार गंगा नहाने को तैयार है। गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या का पाप तो इसने किया नहीं, फिर सहज मामूली बिमारी के लिए किसी को इतना बडा दंड मैं कैसे दिलवाती ?'[१]

(१०) रीति-रिवाज -

रत्ती गौरी के बाबा के साथ जब तरकुलवा से शुभंकरपुर जा रहा था तब स्टेशन तक बाबा बैलगाडी पर न चढे। रत्ती को जिज्ञासा हुई कि आखिर बाबा बैलगाडी पर क्यों नहीं चढ रहे ? क्यों पैदल चल रहे हैं ? अंत में वह पूछ ही लेता है कि वे गाड़ी पर क्यों नहीं चढते ? तो बाबा ने गाँव का स्क रिवाज स्वं उसकी वजह बताते हुए कहा -- 'बच्चा, अब कोई इन बातों का विचार नहीं करता। बैल ठहरे शिवजी के वाहन। इनके चारों पैर धर्म के ही चार चरण हैं। इसीलिए ब्राह्मण न हल जोतते हैं, न गाडी चलाते हैं। चढना मो मना है।'[२]

इस प्रकार कई तरह की परंपराएँ या रीति-रिवाज इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं।

(११) धार्मिक आडम्बर --

भोला पंडित रोज सुबह दुर्गासप्तशती का जो पाठ करते है उसमें भक्ति की भावना की अपेक्षा धार्मिक आडम्बर की मात्रा ही अधिक दिखाई देती है। हाथ

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.५४।

२ वही - पृ.५५।

और जीभ दोनों साथ साथ चलते रहते हैं। अगर दोपहर का निमंत्रण देनेवाला कोई व्यक्ति इसी बीच आ भी जाए तो उसके साथ अस्पष्ट बातें कर देते थे। इस तरह के धार्मिक आडम्बरों से न तो भगवद्भक्ति होती है और न ही मानसिक शांति ही मिलती है। वह तो धर्म की आड़ लेकर पैसे के लालच में आकर कई अनमेल विवाह भी करा लेता है।

(१२) काशी की विडम्बना --

हिंदूओं की सबसे पवित्र नगरी काशी है। बनैली के राजा पद्मानन्दसिंह की रानी पद्मावती ने नेपाली खपड़ा मुहल्ले में तारा भगवती का एक मंदिर बनवाया था। एक लाख रुपये की तहसील भोग-राग के लिए भगवती के नाम ट्रस्ट कर दी गयी थी। यहाँ पर कई बूढ़े और गरीब विद्यार्थियों को भोजन की सुविधा उपलब्ध करा दी जाती थी परंतु यह केवल मैथिल ब्राह्मणों के लिए ही थी। वास्तव मे देखा जाए तो यह सभी के लिए होनी आवश्यक थी परंतु सीमित लोगों में बाँटी जाती थी। बड़े-बड़े पण्डितों को देखकर जयनाथ सोचते हैं -- 'यह अगर पश्चिम की ओर निकल जाए, तो सौ-सौ रुपये का मासिक वेतन पाएँ। परंतु विद्या भी विजया की तरह एक मादक वस्तु है। तभी तो पन्द्रह-बीस-बीस रुपये लेकर जिन्दगीभर ये लोग काशी ही में पढ़ाते रह जाते हैं।'[१]

यहाँ पर नागार्जुन ने बरसों से वही पण्डिताई का काम करनेवाले काशी के पण्डितों की विपदावस्था का चित्रण किया है।

(१३) कुल देवता, ग्रामदेवता से बिछोह असह -

जयकिशोर जब अपनी विधवा माँ को अपने साथ प्रवास के लिए ले जाना चाहता है तो उसकी माँ कहती है --'जनम-भर कहीं नहीं गई और अब बुढ़ापे में क्यों कुलदेवता और ग्रामदेवता की पूजा मुझसे छुड़वाओगे ? पर्व और त्यौहार के

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.७४।

दिनों में देवता-पितर आवेंगे,आँगन घर सूना रहेगा तो निराश लौट जायेंगे।' [१]

गाँव के लोग अपने गाँव,अपना परिसर,अपनी पार्श्वभूमि को छोड़कर कभी-भी जाना पसंद नहीं करते। इसके पीछे उनकी धार्मिक भावना यह है कि ग्रामदेवता से बिछोट होगा।

(१४) मेला --

तीज-त्योहारों का जिस प्रकार ग्रामीण जीवन में महत्व होता है उसी प्रकार मेले का भी महत्व उनके जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। साल में एक बार आनेवाला यह मेला ग्रामीण जीवन में खुशियाँ लेकर आता है। कभी-कभी इनमें झगड़ा-फसाद भी होता है। नागार्जुन ने आलोच्य उपन्यास में शुभंकरपुर के पास होनेवाले बेतिया में विजयादशमी के दिन लगनेवाले मेले का वर्णन करते हुए लिखा है --

'विजयादशमी के रोज बेतिया में बहुत भारी मेला लगता है। गाय,बैल और घोड़े खूब बिकते हैं। जमींदार बाबू प्रति वर्ष मेला में जाते थे। इस बार गाड़ी के लिए बैलों का जोड़ा उन्हें खरीदना था।' [२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन ने आलोच्य उपन्यास में धार्मिक समस्या के कई पहलुओं को चित्रित किया है। ग्रामीण विभाग में धर्म आज किस तरह बदतर अवस्था में पहुँच गया है,इसका चित्रण उन्होंने किया है।

---

१ नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१०३।

२ वही - पृ.१११।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR
KOLHAPUR

निष्कर्ष --

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि नागार्जुन ने धार्मिक समस्याओं के जिन पहलूओं को चित्रित किया है उन्हीं की वजह से आज गाँव के लोगों की हालात कमजोर हो गये है। धर्म के नामपर इन्हें सतानेवाले उच्चवर्णीय लोगों का पर्दाफाश नागार्जुन ने अपने इस उपन्यास में किया है।

उच्चवर्णीय लोगों के चंगुल में फँसने के लिए इनकी गरीबी, अज्ञान, निरक्षारता, अंधश्रद्धा आदि कारण बनते हैं। फिर इन उच्चवर्णीय लोगों को मौका मिल जाता है कि वे धर्म की आड लेकर उनका शोषण करें। उपन्यासकार नागार्जुन शुंककरपुर गाँव की धार्मिक समस्याओं का अंकन करने में सफल दिखाई देते हैं।

* * *